ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

न्याय–वैशेषिक दर्शन में ईश्वर का स्वरूप

[1]रत्नेश विश्वकर्मा
[1]शोधछात्र, संस्कृत–विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

Received: 07 Jan 2019, Accepted: 13 Jan 2019 ; Published on line: 15 Jan 2019

Abstract

ईश्वर एक ऐसा विषय है जिस पर सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही चिन्तन होता आ रहा है तथा प्रत्येक युग के मनीषियों ने इस चिरन्तन विषय पर अपना मौलिक चिन्तन अभिव्यक्त किया है। जहाँ एक तरफ इस दृश्यमान् जगत् से भिन्न किसी अलौकिक ईश्वरीय सत्ता के विषय में चिन्तन होता रहा है, तो वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी विचारक थे, जो ऐसी किसी भी अलौकिक वस्तु को स्वीकार नहीं करते थे, जिसको ईश्वर शब्द से अभिहित किया जा सके तथा वे अलौकिक वस्तु की सत्ता के खण्डन में अपना विचार प्रस्तुत करते रहें हैं। कालक्रम से यह विरोध निरन्तर तीव्रतर होता रहा। एक ओर नास्तिक तथा कुछ आस्तिक दार्शनिक ईश्वर के सत्ता के विरोध में ग्रन्थों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत कर रहे थे, तो दूसरी तरफ ईश्वरवादी विचारक अपने कृतियों के माध्यम से ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने में तत्पर थे।

न्यायदर्शन के प्रारम्भिक ग्रन्थ न्यायसूत्र तथा उसके टीका ग्रन्थों में ईश्वरविषयक अधिक विवेचन नहीं मिलता है। न्याय सूत्र में परमात्मा को अध्यक्ष रूप में जगत् का निमित्त कारण माना गया है। इस ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय के प्रथम आह्निक के केवल 'ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्' , 'न पुरुषकर्माभावे फलनिष्पत्तेः' तथा 'तत्कारित्वादहेतुः' इन तीन सूत्रों में ईश्वर विषयक विवेचन प्राप्त होता है।

नैयायिक गण ईश्वर को सर्वज्ञ, वेदों के द्वारा सभी विषयों का उपदेश करने वाला, सभी कार्यों का सहकारिकारण, व्यापक एवं धर्म और अधर्म की सहायता से परमाणुओं द्वारा सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि कर्ता के रूप में स्वीकार करते हैं।

आचार्य उदयन ने सर्वजन स्वीकृत अनुमान प्रमाण के माध्यम से ईश्वर की सत्ता सिद्ध किया है, इसके लिए उन्होंने नौ हेतुओं को प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार हैं–

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात्प्रत्ययतः श्रुतेः।

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

वाक्यात्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः।।

अर्थात् कार्य, आयोजन, धृति, विनाश, पद, प्रत्यय, वेद, वाक्य तथा संख्याविशेष इन हेतुओं से सर्वज्ञ, अविनाशी परमेश्वर का अनुमान करना चाहिए।

ईश्वर के सत्ता के विषय में सबसे प्रबल हेतु कार्यत्व है। इस कार्यत्वहेतुक प्रथम अनुमान का स्वरूप यह है कि– 'क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्' अर्थात् घटादि जितने भी कार्य दृष्ट हैं, वे सभी किसी कर्ता के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, क्षित्यंकुरादि भी कार्य ही हैं, अतः उनकी उत्पत्ति भी किसी कर्ता से ही होती है। क्षित्यंकुरादि का यह कर्तृत्व अस्मदादि में सम्भव ही नहीं है। अतः अस्मदादि से विलक्षण क्षित्यंकुरादि का कर्ता ही परमेश्वर है।

सृष्टि के आदि में द्व्यणुक के उत्पादक दो परमाणुओं की क्रिया से भी ईश्वर की सिद्धि होती है। जिस क्रिया से कार्य की उत्पत्ति होती है, वह क्रिया अवश्य ही किसी स्वसमानकालिक अर्थात् अपने आश्रयीभूत काल में वर्तमान प्रयत्न से उत्पन्न होती है, जैसे कि चेष्टारूप क्रिया। सृष्टि की आदि की दोनों परमाणुओं की उक्त क्रिया भी चूँकि द्व्यणुकरूप कार्य को उत्पन्न करती है, अतः उसको भी स्वसमानकालिक किसी प्रयत्न से अवश्य उत्पन्न होना चाहिए। उस प्रयत्न का आश्रय कोई शरीरी आत्मा नहीं हो सकता। अतः उक्त प्रयत्न का आश्रय किसी अशरीरी आत्मा को मानना होगा। वही अशरीरी आत्मा है परमेश्वर। अतः यह अनुमान निष्पन्न होता है कि 'परमाण्वादयो हि चेतनायोजिताः प्रवर्तन्ते, अचेतनत्वात् वास्यादिवत्।'

वेद स्वरूप हेतु से भी ईश्वर का अनुमान किया जा सकता है। अनुमान वाक्य है– 'सर्वज्ञप्रणीता वेदाः, वेदत्वात् यत्पुनर्न सर्वज्ञप्रणीतं नासौ वेदो यथेतरवाक्यम्' इसका अभिप्राय यह है कि वेद चूँकि वेद हैं, इसीलिए उनकी रचना सर्वज्ञपुरुष द्वारा हुई है, अस्मदादि के वाक्य वेद नहीं हैं, उनकी रचना सर्वज्ञ पुरुष के द्वारा नहीं हुई है। वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि, वाक्यत्वात्, अस्मदादिवाक्यवत्, अर्थात् जिस प्रकार अस्मदादि के वाक्य हम लोगों के द्वारा रचे जाते हैं, उसी प्रकार चूँकि वेद भी वाक्य है, अतः उनकी रचना भी किसी पुरुष के द्वारा ही होनी चाहिए। इस प्रकार के अनुमान के द्वारा निश्चित वेदों के रचयिता सर्वज्ञ पुरुष ही परमेश्वर है, क्योंकि असर्वज्ञपुरुष के द्वारा अखिलज्ञानराशि वेदों की रचना सम्भव नहीं है।

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

द्वयणुक में अणुपरिमाण की उत्पत्ति द्वयणुक के कारणीभूत दोनों परमाणुओं में रहने वाली अनेक संख्या अर्थात् द्वित्व संख्या से ही होती है। यह द्वित्व संख्या भी चूँकि एकत्व संख्या से भिन्न है, अतः इसकी उत्पत्ति के लिए भी अपेक्षाबुद्धि की आवश्यकता होगी। परमाणुविशेष्यक यह अपेक्षाबुद्धि हम लोगों की नहीं हो सकती। अस्मदादि से विलक्षण जिस पुरुष की अपेक्षाबुद्धि से सृष्टि की आदि में द्वयणुक में अणुपरिमाण की उत्पत्ति होती है, वही विशिष्ट पुरुष परमेश्वर है।

इस प्रकार अनुमान प्रमाण से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती हैं। वह ईश्वर सर्वज्ञ तथा परम आप्त पुरुष है, तथा उसके द्वारा प्रोक्त होने से वेद भी आप्त हैं तथा वेदों में अनेक प्रकार से विविध रूपों में ईश्वर का वर्णन किया है। अतः वेदों में वर्णित ईश्वर तत्त्व शब्द प्रमाण से भी सिद्ध होता है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि–

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख करके हिंसित कर दिया है, इसी से जीव बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। जिसने अमरतत्त्व की इच्छा करते हुए अपने इन्द्रियों को रोक लिया है, ऐसा कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख पाता है। इसीलिए हम जैसे साधारण जनों को यह ईश्वर तत्त्व प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है। हम लोगों की इन्द्रियों के अगोचर परमेश्वर का एवं परमाणु प्रभृति सूक्ष्म विषयों का प्रत्यक्ष आत्मज्ञान योगियों को हो सकता है, एवं होता भी है। इस प्रकार योगियों को जिन परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है, उन्हीं परमेश्वर के प्रसंग में श्रुतियों एवं गीता प्रभृति स्मृतियों में ये वाक्य कहे गये हैं। परमेश्वर कि यदि सत्ता न रहे तो श्रुति एवं स्मृति के वाक्य व्यर्थ हो जायेंगे। 'न द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते' अर्थात् परमेश्वर की दृष्टि अर्थात् ज्ञान का लोप नहीं होता है। इससे परमेश्वर के ज्ञान की नित्यता प्रतिपादित हुई है। 'एकमेवाद्वितीयमिति' एकमेव अर्थात् ईश्वर नाम का ब्रह्म एक ही है, इससे ईश्वर में सजातीयद्वितीयरहितत्व व्यक्त होती है। 'पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' अर्थात् वह विना आँखों के भी देखते हैं एवं विना कानों के भी सुनते हैं। इससे ईश्वर की सर्वज्ञता प्रकट होती है। 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परं चापरमेव च' परब्रह्म अर्थात् परमेश्वर एवम् अपरब्रह्म अर्थात् जीव दोनों ही वेदितव्य हैं अर्थात् दोनों का तत्त्वज्ञान मोक्ष के लिए आवश्यक है। 'यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवाः' अर्थात् देवगण ज्योतिष्टोमादि यज्ञों के द्वारा यज्ञ अर्थात् परमेश्वर का यजनरूप आराधना करते हैं। इससे ज्योतिष्टोमादि अनुष्ठानों से भी ईश्वरसाक्षात्कार के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति सूचित होती है।

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

'यज्ञो वै देवाः' अर्थात् सभी यज्ञ देव परमेश्वर स्वरूप ही हैं। यज्ञ का अनुष्ठान ईश्वर आराधन का ही एक रूप है। 'यज्ञो वै विष्णुः' यज्ञ विष्णु स्वरूप ही है।

ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध जितने भी तर्क और प्रमाण हैं उन सभी तर्कों और प्रमाणों का खण्डन करके अनेक युक्तियों तथा प्रमाणों से ईश्वर की सत्ता सिद्ध हो जाने पर भी वर्तमान वैज्ञानिक युग में जिन नास्तिकों को ईश्वर पर विश्वास नहीं है, उनके लिए बस इतना ही कहना है कि ईश्वरतत्त्व प्रयोगशाला में परीक्षित कोई वस्तु नहीं है, जिस पर 'पहले इस्तेमाल करें, फिर विश्वास करें' का नियम लागू किया जा सके। यह ईश्वर आस्था, श्रद्धा और विश्वास का विषय है। इस पर सर्वप्रथम अटूट विश्वास हो, तब जाकर यह अनुभूति होती है कि ईश्वर है। इतने प्रकार से ईश्वर की सिद्धि होने पर भी जो यह मानने को तैयार नहीं है, कि 'ईश्वर है,' उन अनीश्वरवादी परम नास्तिकों के लिए न्यायकुसुमांजलि ग्रन्थ के अन्त में आचार्य उदयन ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए यह कहा है कि –

इत्येवं श्रुतिनीतिसम्प्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते

येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः।

किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः

काले कारुणिक! त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः।।

अर्थात् इस प्रकार आगम और न्याय के साहित्य रूप प्रचुर जल से धोये गये, जिन नास्तिकों के हृदय में हे भगवन्! आप प्रतिष्ठित नहीं होते हैं अर्थात् जिनको आप के प्रति श्रद्धा और विश्वास नहीं होता है, वे निश्चय ही लोहे अथवा कठोर पाषाण शिला के समान वज्र हृदय वाले हैं। किन्तु ईश्वर के विषय में प्रतिकूल परायण होने पर भी आपत्ति काल में आपका अन्य प्रकार से ध्यान करने वाले उन पुरुषों को हे करुणामय भगवन्! आप ही तारें अर्थात् अपनी स्वाभाविक करुणा से आप ही उनके चित्त को ऐसा स्वच्छ कर दें, जिसमें आप का यथार्थ स्वरूप का उन्हें प्रतिभास हो सके।

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 01, Jan 2019

संदर्भ सूची–

1. न्यायसूत्र 4.1.19।
2. वही 4.1.20।
3. वही 4.1.21।
4. न्यायकुसुमांजलि पंचम स्तबक श्लोक 1।
5. वही पृ 671
6. कठोपनिषद् द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली श्लोक 1।
7. न्यायकुसुमांजलि 5.18।